International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 04(II), October - December, 2024, pp. 79-83

कृषि प्रगति एवं पर्यावरण प्रभाव के संदर्भ में एक अध्ययन

धर्मेन्द्र कुमार शर्मा*

सार

कृषि प्रगति पर पर्यावरण प्रभाव के संदर्भ में सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि पर्यावरण क्या है? इसके लिए हमें शब्द ''जैव विविधता'' का अर्थ और विस्तार जानना आवश्यक है। स्पष्टतः आधारभूत प्राकृतिक संसाधनों, जैसे वायु, जल, वन आदि के अलावा जैव विविधता में बहुत से अन्य जीव और सूक्ष्मजीव शामिल हैं, जो सभी धारणीय तरीके में पर्यावरण संतुलित रखने में अपनी भूमिका निभाते हैं। उच्चतर कृषि उत्पादन प्राप्त करने की पद्धतियाँ बृहत्तर पारितंत्र पद्धति को कितना प्रभावित कर सकती हैं? इस लेखपत्र में इस विषय से संबंधित अध्ययन किया गया है।

लेख के शोध प्रश्न : *(1). पर्यावरण पर कृषि प्रगति का प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारकों की पहचान करना (2). पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव करने वाली कृषि क्रियाओं का वर्णन करना (3). पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने वाले निवेशों के सघन प्रयोग से संबद्ध कारकों को स्पष्ट करना (4). धारणीय कृषि प्रगति के बाधाकारी/पुनःस्थापक मुद्दों से संबंधित नीतिगत समस्याओं की रूपरेखा को समझाना।*

शब्दकोशः *जैव विविधता, प्राकृतिक संसाधन, पर्यावरण, कृषि, सूक्ष्मजीव।*

प्रस्तावना

कृषि प्रगति के पर्यावरणी प्रभाव की समस्या उसके उत्पादन के कारण मृदा, भूमि, जल, वायु पारिस्थितिक तंत्र के अन्य पदार्थों (प्राकृतिक संसाधनों आदि) के अधारणीय अवक्षय और निम्नीकरण से संबंधित है। मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में चर्चा की गई है। यहां पर हरित क्रांति की हमारी उपलब्धि के संदर्भ में कृषि प्रगति पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभावों पर चर्चा की गई है। ''धारणीयता संबंधी पद्धतियों'' और ''संरक्षण कृषि पद्धतियों'' को भी स्पष्ट किया है और हाल में उच्चतर उत्पादन प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित करते समय भी पर्यावरणी क्षति न्यूनतमीकरण के महत्त्व पर जागरूकता जताई गयी है।

जैव विविधता और कृषि प्रगति के नकारात्मक पर्यावरणी प्रभाव

शब्द जैव विविधता या जैविक विविधता का संबंध पारिस्थिति तंत्रों में परिवर्तनशीलता से है। ये भिन्न–भिन्न पारिस्थितिक तंत्र, जैसे समुद्र और सागर, नदियां और झील, मरुस्थल और

* शोधार्थी, भूगोल विभाग, महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान।

घास स्थल, वन और पर्वत, मुख्य भूमि और भीतरी भूमि आदि हैं। ये पारिस्थितिक तंत्र सप्राण जीवों (जैसे मनुष्यों, पौधों, पशुओं और रोगाणुओं) के समुदाय के लिए आवास और पर्यावरण के प्राणहीन घटकों, जीवन–यापन के लिए महत्त्वपूर्ण, जैसे वायु, जल, मृदा, आदि प्रदान करते हैं। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में सप्राण जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ हैं जिसमें प्रत्येक आनुवंशिक रूप से भिन्न–भिन्न है। पारिस्थितिक तंत्र के अंदर इस विविधता को इस कारण से संरक्षित किया जाना आवश्यक है कि ग्रह (अर्थात् पृथ्वी) पर संपूर्ण जीवन प्रणाली एक दूसरे पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निर्भरता से परस्पर संबद्ध है जिसे ''जीवन का जाल'' कहा जाता है। इसके कारण यदि एक विलुप्त प्रजाति अन्य प्रजाति को भी प्रभावित करती है। अंततः एक प्रतिक्रिया श्रृंखला प्रारंभ होती हैं जिसके कारण कई प्रजातियों की मृत्यु हो जाती हैं। इससे चिर–स्थायी तरीके में पारिस्थितिक तंत्र बाधित होता है। कृषि के संदर्भ में अधिक कृषि भूमि बनाने के लिए वन में वृक्षों की कटाई से एक ओर वन आवरण कम होने की संभावना होती है तो दूसरी ओर बहुत से वन्य पशुओं के वास स्थल भी बाधित होते हैं। इसी प्रकार जलाशयों के प्रदूषण से मछलियां भी प्रभावित होती हैं।

इसी प्रकार रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग और बहुत गहराई से भौमजल निकालने के कारण मृदा भी अपनी उर्वरता खो सकती है। भूमि, जल, मृदा और वायु की गुणवत्ता का ह्रास पर्यावरण क्षति का अल्पकालिक घटक बनता है। इसके विपरीत पारिस्थितिक परिवर्तनों के अनुसार पर्यावरण बाधाएं अपेक्षाकृत लंबे समय के बाद होती हैं। जैव विविधता परिवर्तन जिनके कारण पर्यावरण का ह्रास होता है, मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव डालता है। यद्यपि जल और मृदा से कृषि उत्पाद संदूषित होते हैं, जो उसके उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, जैव विविधता की क्षति (जैसे HYV बीजों के प्रयोग द्वारा) बहुत–सी देशी प्रजातियों का विस्थापन और मूल्यवान जीन कोश का विलोपन कर सकती है ।

यद्यपि ये कृषि प्रगति के नकारात्मक पर्यावरणी प्रभाव के उदाहरण हैं परंतु खाद्य सुरक्षा की प्राप्ति और बहुत से औषधीय उत्पादों की खोज (जिनमें से अधिकांश प्राकृतिक वनभूमि में उगने वाले/रहने वाले पादपों और पशुओं से प्राप्त होते है, मानव जाति के लिए इसका विशुद्ध लाभ जैव विविधता संरक्षण के सकारात्मक आयाम हैं। कृषि के लिए विशिष्ट जैव विविधता का प्रकार ''कृषि जैव विविधता'' है। यह कृषि के लिए सुसंगत जीव के सभी रूपों जैसे विरल बीज किस्म सभी पशु नस्लों सहित अन्य जीव जैसे खरपतवार, नाशकजीव आदि का संकेत देता है।

प्रौद्योगिकीय कृषि विकास और ग्रीनहाऊस गैस उत्सर्जन

पिछले कुछ समय से इस बात पर आग्रह हो रहा है कि संवृद्धि की प्रक्रिया में धारणीयता और समाहन के सरोकार पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वैसे तो यह विचार समूची अर्थव्यवस्था पर मान्य होता है – किंतु कृषि के संदर्भ में इसके ये आयाम होंगे :

- खाद्य सुरक्षा संबंधी चिंताएं, और
- कृषि विविधीकरण की आवश्यकता के साथ.साथ गैर–कृषि क्षेत्र का संवर्धन।

यहां पर्यातंत्र में विक्षोभ पैदा कर रही गैर.धारणीय कार्य पद्धतियों पर नियंत्रण एक बड़ी नीतिगत चुनौती सिद्ध हो रही है।

- **सभी अंतर्निहित संबंधों को समझने की कुंजी एक ही है** : आधुनिक यंत्रों एवं उपकरणों सहित सभी जीवधारियों को अपने कार्य निष्पादन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। किंतु ऊर्जा के उत्पादन एवं उपयोग क्रम में वातावरण में हानिकर गैसों का उत्सर्जन/निःसरण होता है। इसी कारण जैविक विविधता का संतुलन बनाए रखने में पर्यावरण की भूमिका एक निर्णायक रूप धारण कर जाती है।
- **इसकी कार्यविधि इस प्रकार रहती है** : प्राकृतिक प्रक्रिया में सूर्य की किरणों से विकिरण की मात्रा वायुमंडलीय गैसों द्वारा छानी जाती है और पृथ्वी इष्टतम स्तर पर गर्म बनी रहती है। इससे पृथ्वी जीवों के रहने योग्य रहती है। परंतु संवृद्धि प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए आवश्यक विद्युत/ऊर्जा की बढ़ी हुई मांग वायुमंडल में प्रदूषकों की बहुत बड़ी मात्रा छोड़ता है। अधिकांश मामलों में यह किसी न किसी गैसीय रूप में छोड़ी जाती है। ये गैसें (जो मोटे तौर पर पांच अर्थात् जल वाष्प, कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड और ओजोन) ''ग्रीनहाऊस गैस'' (GHG) कहलाती हैं।

जब इन गैसों का उत्पादन आत्मसात करने या अवशोषण करने की प्रकृति की क्षमता से अधिक होता है तो अवशोषित न किया गया भाग पृथ्वी की सतह की ओर विकिरित होता है (जिसे पुनर्विकिरण कहा जाता है)। इससे पृथ्वी पर औसत तापमान बढ़ता है। यह परिघटना ग्लोबल वार्मिंग के नाम से जानी जाती है। पर्यावरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जनों के अवशोषण में होती है। परंतु उसकी अवशोषणात्मक शक्ति चहुंमुखी प्रौद्योगिकीय विकास की मांग के कारण मनुष्य द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं की धारणीय/अधारणीय सीमा द्वारा निर्धारित होता है। पारितन्त्र की यह धारण क्षमता हरित आवरण के ह्रास के कारण कम हो सकती है। जब ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन कम किया जाता है तो इस धारण क्षमता में सुधार होता है। इसे ध्यान में रखते हुए वनीकरण और प्राकृतिक संरक्षी उपायों में तालमेल का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है।

विश्व भर में यह अनुमान लगाया गया है कि कृषि ग्रीनहाऊस गैस उत्सर्जन के लगभग 20 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी है। इसलिए संवृद्धि प्रयासों को ऐसा संतुलित बनाना नीतिगत चुनौती है कि GHG उत्सर्जन (उसके परिणामतः पुनर्विकिरण प्रभाव सहित) पृथ्वी की उनके नकारात्मक प्रभावों के अवशोषण और समाप्त करने की क्षमता से अधिक न हो। इस उत्सर्जन को बदलती हुई कृषि क्रियाओं और फसल कटाईबाद की उन्नत सुविधाओं (जैसे शीतागारों की श्रृखलाएं और प्रोसेसिंग सुविधाएं) की स्थापना से बहुत बढ़ावा मिला है। साथ ही, सार रूप में इनकी भी चर्चा हो सकती है :

- अवनीकरण जिससे वायु में कार्बन डाईआक्साइड का संकेंद्रण होता है,
- अवैज्ञानिक पशु खाद प्रबंधन पद्धतियां और मीथेन के अधिक उत्सर्जन में सहायक सघन चावल उत्पादन, और

- अधिक नाइट्रस आक्साइड उत्सर्जन में सहायक रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग ग्रीनहाऊस गैसों का माप ग्लोबल वार्मिंग में उसके योगदान की शक्ति के आधार पर होता है।

दूसरे शब्दों में, ग्रीनहाऊस गैस की शक्ति का उसकी ग्लोबल वार्मिंग शक्ति के रूप में उल्लेख किया जाता है। कार्बन डाईआक्साइड की इकाइयों के बराबर ली गई मात्रा से यह अनुमान लगाया जाता है कि मीथेन की शक्ति 23 गुणा अधिक है, और नाइट्रस आक्साइड की शक्ति कार्बन डाइआक्साइड की अपेक्षा 310 गुणा अधिक है। इससे दो कृषि उत्सर्जनों द्वारा पर्यावरण पर प्रभाव की सीमा स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है।

कृषि प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और आर्थिक पद्धतियां

प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, जो पर्यावरणी प्रभाव के लिए चालक के रूप में कार्य करते हैं, क्षेत्र विशेष में कृषि आर्थिक पद्धति द्वारा भी प्रभावित होते हैं। इस दृष्टि से पर्यावरणी प्रभाव अर्थात् जैव विविधता (जिसके वायु, जल, मृदा, आदि भाग हैं) के प्रमुख क्षेत्र के अलावा, AES स्वयं प्रभाव का क्षेत्र हो जाता है। AES अपनी भौगोलिक विशेषताओं द्वारा वर्गीकृत की जाती हैं, जैसे –

- शुष्क या सूखा क्षेत्र,
- तटीय क्षेत्र,
- पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्र,
- वर्षा प्रधान क्षेत्र,
- सिंचित क्षेत्र, आदि।

AES पर पर्यावरणी प्रभाव या तो प्रौद्योगिकी विकास के कारण कृषि संवर्धक सुविधाओं की स्थापना के या उस क्षेत्र के लिए प्राकृतिक रूप से अनुपयुक्त कृषि पद्धति के अंगीकरण के परिणाम है। इस प्रकार के उदाहरणों में शामिल हैं :

- क्षेत्र के शुष्क लक्षण समाप्त करने के लिए (शुष्क भूमि कृषि प्रोत्साहित करने के बदले) सिंचाई के लिए बांधों का निर्माण,
- अत्यधिक चराई और सस्यन प्रयोजनों के लिए सामान्य भूमि का परिवर्तन, इससे भूमि शुष्क हो जाती है और पशुओं के लिए घास दुर्लभ हो जाता है,
- जल अभाव क्षेत्र में जल सघन फसल उगाना, इससे भौम जल स्तर नीचे चला जाता है (HYV बीज विकास के फलस्वरूप) आदि।

परंतु दुष्प्राप्य संसाधनों का पुनर्वितरण जैसे अधिशेष क्षेत्रों से जल की कमी वाले क्षेत्रों में नहर बनाकर उसका मार्ग बनाना, किसानों को अधिक आय देने के लिए फसल की वाणिज्यिक व्यावहार्यता को ध्यान देना ताकि पानी बर्बाद न जा सके। ये ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं जो अपने आप में तर्कसम्मत हैं। परंतु उस सीमा तक कि अधारणीय संसाधन प्रयोग से सघन कृषि कार्य के परिणाम उनके प्रतिकूल पर्यावरणी प्रभाव नहीं हो। इसके लिए संतुलित और वैज्ञानिक दृष्टि

से निश्चित कार्रवाई करना आवश्यक है। अपनाई गई भारतीय कृषि विकास नीतिगत के बल पर देश को (कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना दृष्टिकोण के अधीन) निश्चित कृषि आर्थिक क्षेत्रों में विभाजित करने और विकास के लिए उसकी विशिष्ट विशेषताओं पर रहा है। नीति आयाम की एक अन्य विशेषता जल विभाजक प्रबंधन पद्धति का अंगीकरण रहा है जिसे सातवीं योजना अवधि के दौरान प्रारंभ किया गया था।

निष्कर्ष

पिछली कुछ दशाब्दियों के दौरान कृषि प्रगति की उपलब्धि के देश की प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हुए। इनमें से बहुत से तो कृषि वृद्धि बढ़ाने के लिए अपनाई गई नीति के प्रत्यक्ष परिणाम हैं। कृषि क्रियाओं से पर्यावरणीय क्षति न्यूनतम करने के लिए बहुत–सी निश्चित नीतिगत पहलें भी क्रियान्वित की गई हैं। GHG उत्सर्जन और असंतुलित क्षेत्रीय विकास के अनुसार पर्यावरणीय विकृतियों और असंतुलित क्षेत्रीय विकास भारत में कृषि प्रगति की उपलब्धि में स्पष्ट देखी गई है। परंतु पूर्वोक्त (अर्थात् GHG उत्सर्जन) में प्रवृत्ति केवल भारत में ही अनूठी नहीं है। यह विश्वव्यापी परिदृश्य है जिसमें जलवायु परिवर्तन में प्रतिकूल प्रभाव डालने के कारण आधुनिक कृषि क्रियाओं का योगदान अंतर्राष्ट्रीय चिंता का मामला बन गया है। उन कारकों में जिन्होंने पर्यावरण पर इस प्रतिकूल प्रभाव में योगदान किया है, सघन कृषि क्रियाएँ, जैसे एकधा सस्यन, निरंतर खेती, जोताई आदि है तो दूसरी ओर अजैव उवर्रकों, परजीवीनाशियों, नई किस्म के बीजों आदि का सघन प्रयोग गिनाए जा सकते हैं। विशेषकर भारत जैसी कृषि अर्थव्यवस्थाओं के संबंध में धारणीय कृषि क्रियाओं के अपनाने पर सामूहिक सहभागिता स्थापित करने के लिए रणनीतियों का पुनर्भिविन्यास करना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Jenifer Wightman, Production and Mitigation of Greenhouse Gases in Agricutlre, http://www.climateandfarming.org/pdfs/FactSheets/IV.IGHGs.pdf
2. Katherin Killebrew and Hendrik Wolff, Emvironmental Imapacts of Agricutural Technoligies, EPAR Brief No. 65, University of Washington, March, 2010. [http://faculty.washington.eduhgwolff/cv.pdf]
3. Sudhakar Yedla and Sowjanya Peddi, India Environment National Assessment, October, 2003. [ftp://ftp.fao.org/es/esa/roa/pdf/2_Environment/Environment_IndiaNA.pdf]
4. V.P. Sharma & Hrima Thaker, Fertiliser Subsidy in India: Who are the Beneficiaries?, Special Article, EPW, Vol. XLV, No. 12, March, 2010.

❖◆❖